कलश ४४ का भावार्थ। **रागादिक चिद्विकार को (-चैतन्यविकारों को) देखकर ऐसा भ्रम नहीं करना कि ये भी चैतन्य ही हैं,...** क्या कहते हैं ? कि इसकी पर्याय में राग और द्वेष तथा विकार की दशा देखकर, उसके प्रति लक्ष्य नहीं करना, यह भ्रम नहीं करना कि वह चैतन्य का स्वरूप है, ऐसा। उसके प्रति लक्ष्य छोड़कर ज्ञान की परिणति द्वारा द्रव्य का लक्ष्य करना और उसका अनुभव करना, वह चैतन्य है। पर्याय में राग और द्वेष, पुण्य और पाप, वह चिद्विकार है परन्तु वह देखकर ऐसा भ्रम नहीं करना कि यह मेरी चीज़ है क्योंकि यह राग और द्वेष, दया, दान आदि के परिणाम आत्मा की प्रत्येक

अवस्था में व्याप्त नहीं होते; इसलिए ये रागादि चिद्विकार देखकर वहाँ लक्ष्य नहीं बाँधना। आहाहा! ज्ञान की पर्याय द्वारा त्रिकाली द्रव्य का लक्ष्य करना, उसका अनुभव करना, वह चैतन्य है। आहाहा!

क्योंकि चैतन्य की सर्व अवस्थाओं में व्याप्त हों... भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु की प्रत्येक अवस्था में रहे तो उसकी चीज़ कहलाये। आहाहा! **रागादि विकार सर्व अवस्थाओं में व्याप्त नहीं होते...** यह विकल्प जो है रागादि, वह कहीं आत्मा की प्रत्येक अवस्था में नहीं रहते। है न? **मोक्ष अवस्था में उनका अभाव है...** आहाहा! सिद्ध क्या करना है? कि विकार की दशा हो परन्तु वह चैतन्यस्वरूप की नहीं है अर्थात् विकारदशा हो परन्तु वहाँ लक्ष्य करनेयोग्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लक्ष्य तो चैतन्य परिणति द्वारा चैतन्यस्वरूप की दृष्टि करके अनुभव करनेयोग्य है। आहाहा! ऐसी बात है। एक बात-उसकी प्रत्येक अवस्था में व्याप्त नहीं है, इसलिए वे चैतन्य का स्वरूप नहीं; इसलिए उन्हें लक्ष्य में लेने योग्य नहीं। प्रथम, इसे लक्ष्य में ज्ञायकस्वरूप है, उसे लक्ष्य में लेकर और जो ज्ञान-अनुभव हो, पश्चात् राग है, उसे जाने कि मुझमें नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। एक बात।

और उनका अनुभव भी आकुलतामय दुःखरूप है। आहाहा! चाहे तो वह विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति का हो परन्तु वह आकुलतामय दुःखरूप है। पहले ऐसा कहा कि वह पुण्य और पाप, दया, दान, राग-विकार, वह चैतन्य का विकार भासित होता है परन्तु वह चैतन्य का नहीं है, क्योंकि उसकी प्रत्येक अवस्था में नहीं रहता; इसलिए उसका नहीं है। इस कारण उसका लक्ष्य छोड़कर ज्ञायक की ओर का अनुभव करना। आहाहा!

अब दूसरी बात करते हैं। इसका चिद्विकार प्रत्येक अवस्था में नहीं, परन्तु जिस अवस्था में है, आहाहा! उसका अनुभव भी आकुलतामय है। आहाहा! वह प्रत्येक अवस्था में नहीं, इसलिए इसके नहीं परन्तु जब इसकी अवस्था में है, आहाहा! तब वह आकुलतामय दुःखरूप है। आहाहा! चाहे तो वह विकल्प शुभराग हो या अशुभ हो, वह तो आकुलतामय है। भगवान आत्मा आकुलतास्वरूप नहीं, वह तो अनाकुल आनन्दस्वरूप है। देखो! इसे भिन्न को सिद्ध किया। यह राग का विकल्प चाहे तो भक्ति का हो या पूजा का हो या दया का हो या दान का हो। आहाहा! परन्तु यह राग, आत्मा की प्रत्येक अवस्था

में नहीं; इसलिए वह आत्मा का नहीं। क्योंकि मोक्ष अवस्था में उसका अभाव हो जाता है; इसलिए अभाव हो जाता है, वह चीज़ इसकी नहीं है। एक बात।

अब अवस्था में जहाँ है, आहाहा! अवस्था में जहाँ रागादि विकल्प है, उसका अनुभव भी आकुलतामय है। आहाहा! प्रत्येक अवस्था में नहीं, इसलिए वे इसके नहीं परन्तु जिस अवस्था में है, वहाँ भी वे आकुलतामय है। आहाहा! ऐसी बात है। **उनका अनुभव भी...** ऐसा, इसकी अवस्था में है वहाँ; नहीं वहाँ नहीं, इसलिए यह तो सवाल रहता नहीं परन्तु अब इसकी अवस्था में जहाँ है, वहाँ भी, ऐसा। आहाहा! **आकुलतामय दुःखरूप है।** आहाहा! समझ में आया? प्रत्येक अवस्था में नहीं, इसलिए इसके नहीं-एक बात। और इसकी अवस्था में जब वे जिस-जिस अवस्था में हैं, वहाँ भी वे आकुलतामय दुःखरूप है। आहाहा! देखो न! भिन्न-भिन्न (सिद्ध किया)। आहाहा!

चैतन्य भगवान आत्मा की प्रत्येक अवस्था में तो ज्ञान और दर्शन आदि होते हैं परन्तु रागादि प्रत्येक अवस्थाओं में नहीं होते - एक बात, परन्तु दूसरी बात - जब अवस्था में (रागादि) हैं तब, आहाहा! आहाहा! **उनका अनुभव भी...** आहाहा! उस राग का वेदन आकुलतामय, आकुलतामय दुःखरूप... आहाहा! गजब बात है। किस प्रकार सिद्ध करते हैं? कि भगवान तो अनाकुल आनन्दस्वरूप है न? आहाहा! उसकी अवस्था में होते हैं, तथापि वे तो दुःखरूप हैं न? आहाहा! वह शुभराग भी दुःखरूप है। आहाहा! इसलिए उसके आनन्दस्वरूप से अलग जाति है, इसलिए उनसे (रागादि से) भिन्न भगवान हैं। समझ में आया? आहाहा!

देखो, पण्डित जयचन्दजी भी इतना स्पष्ट, अत्यन्त सादी भाषा में (स्पष्टीकरण करते हैं)। आहाहा! उनकी भिन्नता का भान कैसे हो? आहाहा! इसकी अवस्था में जहाँ है... प्रत्येक में तो नहीं, परन्तु जहाँ है, आहाहा! वहाँ भी वह राग है, वह आकुलतामय दुःखरूप है। वह आकुलतामय दुःखरूप है। आहाहा! इसलिए वे चेतन नहीं है। आहाहा! आकुलता और दुःखरूप राग है, इसलिए वे चेतन नहीं हैं। क्यों? कि वे जड़ हैं। क्यों? कि **चैतन्य का अनुभव निराकुल है,...** आहाहा! जो भगवान आत्मस्वरूप है, वह आनन्दस्वरूप है और उसका अनुभव भी आनन्दस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया?

वह आकुलतामय है, इसलिए वह जीवस्वरूप नहीं है। प्रत्येक अवस्था में व्याप्त नहीं है, इसलिए वह जीवस्वरूप नहीं है। आहाहा! ऐसी सादी भाषा में... आहाहा! अन्दर भगवान भिन्न है। वर्तमान में हो तब भी वह दु:ख का अनुभव है और आत्मा चैतन्य का अनुभव,... आहाहा! राग का अनुभव हो, तब भी दु:खरूप है और तब भगवान चैतन्य का अनुभव, वह निराकुल है। आहाहा! ऐसा है। चैतन्यभगवान आनन्दस्वरूप की वर्तमान दशा में भी आनन्द का अनुभव है। आहाहा! यह उसकी दशा है। समझ में आया? उसकी दशा में रागादि हैं, वे तो दु:खरूप हैं; इसलिए वे आकुलता हैं और भगवान उस समय भी चैतन्य का अनुभव तो अनाकुल और आनन्द है। आहाहा!

चैतन्यस्वरूप जो भगवान आत्मा, वह आनन्दस्वरूप है, उसका अनुभव तो अनाकुल आनन्दरूप अनुभव है। आहा! उसकी अवस्था में होने पर भी (रागादि), वह दु:खरूप है और इसकी अवस्था-भगवान की अवस्था, वह अनुभव आनन्दरूप है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें! धर्म के नाम पर लोगों ने कुछ का कुछ करा दिया है। आहाहा! चैतन्य आनन्दस्वरूप प्रभु तो उसकी अवस्था में होनेवाला राग दु:खरूप और चैतन्य का अनुभव सुखरूप है। इसलिए वह (राग) जीव का नहीं है। आहाहा!

वही जीव का स्वभाव है... देखा? **चैतन्य का अनुभव निराकुल है,...** आहाहा! अनुभव निराकुल है। आहाहा! ज्ञान की परिणति की प्रगट दशा है, उसे अन्तर में झुकाने पर, पर्याय में अनाकुलता का अनुभव होता है, आनन्द का अनुभव होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और इससे चैतन्य का अनुभव आनन्द है और राग का अनुभव दु:ख है; इसलिए वह जीव का नहीं है। आहाहा! ऐसी बात को अन्तर में पहुँचे, वह अन्तर में गति किये बिना वह मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! जहाँ ज्ञान की पर्याय, वर्तमान प्रगट है, उसका लक्ष्य करके अन्तर (में) झुक। वहाँ राग है, उसका लक्ष्य छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ज्ञान की वर्तमान दशा जो प्रगट है, उसका लक्ष्य लेकर अन्दर में जा, उसके लक्षण से अन्दर में जा, इससे तुझे आनन्द का अनुभव होगा और यह राग, वह तो दु:खरूप है, आकुलता है। आहाहा! इसलिए वह चैतन्य के स्वभाव से राग आकुलतामय है; इसलिए भिन्न हैं। अजीव स्वभाव है। आहाहा! ऐसा स्वरूप लोगों को कठिन पड़ता है। अभ्यास

नहीं करते और इस सम्यग्दर्शन के बिना सीधे व्रत ले लेना, पंचम गुणस्थान हो गया (ऐसा मान लेते हैं)। क्या हो प्रभु? भाई! यह व्रत का विकल्प है, वह भी दुःखरूप है। आहाहा! वह विकल्प प्रत्येक अवस्था में तो नहीं। आहाहा! परन्तु जब है, तब भी उस पर लक्ष्य करनेयोग्य नहीं है क्योंकि वह दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया? है, तब भी वह दुःखरूप है; इसलिए उसका लक्ष्य करनेयोग्य नहीं है। आनन्दरूप भगवान आत्मा है, वहाँ लक्ष्य करके अनुभव करनेयोग्य है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। आहा! वीतराग सर्वज्ञ के सन्त ऐसा प्रसिद्ध करते हैं, छद्मस्थ प्राणी, आहाहा! पंचम काल में ऐसा प्रसिद्ध करते हैं। आहा! भाई! तू प्रभु आत्मा है, क्योंकि आत्मा है, उसकी पर्याय तो कायम निर्मलादि कायम रहती है, वह रागरूप नहीं है भाई! और जब यह राग है, तब भी वह दुःखरूप है; इसलिए तू आनन्दस्वरूप है, उस आनन्द के अनुभव के समक्ष यह तो दुःखरूप है। आहाहा!

वही जीव का स्वभाव है, ऐसा जानना। आहाहा! जो आनन्दस्वभाव त्रिकाली है, वह जीव, परन्तु उसका अनुभव हो, तब इसे ज्ञात होता है कि यह जीव है। समझ में आया? इसे राग के प्रति लक्ष्य छोड़कर, उसका (स्वभाव का) अनुभव होने पर जो पर्याय में स्वाद आवे, तब यह जाने कि ओहोहो! यह तो आनन्दस्वरूप ही भगवान है - ऐसी बात है। क्या हो? यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : नमूना से माल का ख्याल आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नमूना... राग इसकी प्रत्येक अवस्था में नहीं है, इसलिए इसका नहीं है, एक बात परन्तु जब है, तब दुःखरूप है और जो भगवान आत्मा है, वह आनन्दस्वरूप है और उसका अनुभव होता है, वह आनन्दरूप है। आहाहा! समझ में आया? यह तो उतावलों का काम नहीं है, बापू! यह तो धीरजवान का काम है। आहाहा! धीर बुद्धि, धीर प्रेरति, जो ज्ञान और बुद्धि अन्दर में प्रेरे-जाये, उसे धीर कहते हैं। धी-बुद्धि, र-प्रेरे जो ज्ञान पर्याय अन्दर में जाये, उसे धीर कहते हैं। आहाहा! केवलज्ञान को भी बुद्धि कहा है। केवलज्ञान को बुद्धि कहा है। ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान है न? उसे यहाँ बुद्धि शब्द प्रयोग किया है। शास्त्र में आता है बहुत जगह (आता है)। एक हजार आठ (नाम) में तो बहुत आता है। ज्ञान धीर, आनन्द धीर... आहाहा!

जब राग है, तब भी उसमें से लक्ष्य छोड़, क्योंकि वह तो दुःखरूप है। आहाहा! और भगवान आत्मा में दृष्टि कर कि जिससे तुझे उसी पर्याय में आनन्द का अनुभव हो, वही जीव है। आहाहा! समझ में आया? इतना भावार्थ आया ४४ का। सिद्धान्त तो उसे कहते हैं कि थोड़े में बहुत-गागर में सागर भरा हो। आहाहा!

कलश-४५

अब, भेदज्ञान की प्रवृत्ति के द्वारा यह ज्ञाता द्रव्य स्वयं प्रगट होता है, इस प्रकार कलश में महिमा प्रगट करके अधिकार पूर्ण करते हैं :—

इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा
जीवाजीवौ स्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः।
विश्वं व्याप्य प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या
ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे।।४५।।

इति जीवाजीवौ पृथग्भूत्वा निष्क्रान्तौ।

इति श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायां समयसारव्याख्यायामात्मख्यातौ जीवाजीव-प्ररूपकः प्रथमोऽङ्कः।

श्लोकार्थ - [इत्थं] इस प्रकार [ज्ञान-क्रकच-कलना-पाटनं] ज्ञानरूपी करवत का जो बारम्बार अभ्यास है, उसे [नाटयित्वा] नचाकार [यावत्] जहाँ [जीवाजीवौ] जीव और अजीव दोनों [स्फुट-विघटनं न एव प्रयातः] प्रगटरूप से अलग नहीं हुए, [तावत्] वहाँ तो [ज्ञातृद्रव्यं] ज्ञाताद्रव्य, [प्रसभ-विकसत्-व्यक्त-चिन्मात्रशक्त्या] अत्यन्त विकासरूप होती हुई अपनी प्रगट चिन्मात्रशक्ति से [विश्वं-व्याप्य] विश्व को व्याप्त करके, [स्वयम्] अपने आप ही [अतिरसात्] अतिवेग से [उच्चैः] उग्रतया अर्थात् आत्यन्तिकरूप से [चकाशे] प्रकाशित हो उठा।

भावार्थ - इस कलश का आशय दो प्रकार का है —

उपरोक्त ज्ञान का अभ्यास करते-करते जहाँ जीव और अजीव दोनों स्पष्ट भिन्न

समझ में आये कि तत्काल ही आत्मा निर्विकल्प अनुभव हुआ-सम्यग्दर्शन हुआ। (सम्यग्दृष्टि आत्मा श्रुतज्ञान से विश्व के समस्त भावों को संक्षेप से अथवा विस्तार से जानता है, और निश्चय से विश्व को प्रत्यक्ष जानने का उसका स्वभाव है; इसलिए यह कहा कि वह विश्व को जानता है।) एक आशय तो इस प्रकार है।

दूसरा आशय इस प्रकार से है — जीव-अजीव का अनादिकालीन संयोग केवल अलग होने से पूर्व अर्थात् जीव का मोक्ष होने से पूर्व, भेदज्ञान के भाते भाते अमुक दशा होने पर निर्विकल्प धारा जमीं - जिसमें केवल आत्मा का अनुभव रहा और वह श्रेणी अत्यन्त वेग से आगे बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान प्रगट हुआ और फिर अघातियाकर्मों का नाश होने पर जीवद्रव्य अजीव से केवल भिन्न हुआ। जीव-अजीव के भिन्न होने की यह रीति है॥५६॥

टीका - इस प्रकार जीव और अजीव अलग अलग होकर (रंगभूमि में से) बाहर निकल गये।

भावार्थ - समयसार की इस 'आत्मख्याति' नामक टीका के प्रारम्भ में पहले रंगभूमिस्थल कहकर उसके बाद टीकाकार आचार्य ने ऐसा कहा था कि नृत्य के अखाड़े में जीव-अजीव दोनों एक होकर प्रवेश करते हैं और दोनों ने एकत्व का स्वाँग रचा है। वहाँ भेदज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष ने सम्यग्ज्ञान से उन जीव-अजीव दोनों की उनके लक्षणभेद से परीक्षा करके दोनों को पृथक् जाना, इसलिए स्वाँग पूरा हुआ और दोनों अलग-अलग होकर अखाड़े से बाहर निकल गये। इस प्रकार अलंकारपूर्वक वर्णन किया है।

जीव-अजीव अनादि संयोग मिलै लखि मूढ़ न आतम पावैं,
सम्यक् भेदविज्ञान भये बुध भिन्न गहे निजभाव सुदावैं;
श्री गुरु के उपदेश सुनै रु भले दिन पाय अज्ञान गमावैं,
ते जगमाँहि महन्त कहाय वसैं शिव जाय सुखी नित थावैं।

इस प्रकार श्री समयसार की (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री समयसार परमागम की) श्रीमद् अमृतचंद्राचार्यदेवविरचित आत्मख्याति नामक टीका में जीव -अजीव का प्ररूपक पहला अंक समाप्त हुआ।

कलश-४५ पर प्रवचन

अब, भेदज्ञान की प्रवृत्ति के द्वारा यह ज्ञाता द्रव्य... यह क्या कहा? भेदज्ञान की प्रवृत्ति द्वारा अर्थात् राग का लक्ष्य छोड़कर अन्तर में लक्ष्य जाने का अभ्यास करने पर, आहाहा! **भेदज्ञान की प्रवृत्ति के द्वारा...** यह राग आकुलता है, यह राग प्रत्येक अवस्था में नहीं; इसलिए इससे भिन्न पड़ने पर, आहाहा! इसकी भिन्नता का अभ्यास करने पर **भेदज्ञान की प्रवृत्ति के द्वारा यह...** आत्मद्रव्य **स्वयं प्रगट होता है,...** भगवान आत्मा पर्याय में प्रगट होता है। आहाहा! शक्तिरूप से अनन्त गुण का धाम भगवान, परन्तु इसे विकल्प जो रागादि, उनसे भिन्न अभ्यास करने पर... आहाहा! क्योंकि चैतन्यद्रव्य, राग से भिन्न है। आहाहा! इसलिए राग से भिन्न अभ्यास करने पर, भेदज्ञान का अभ्यास करने पर, आहाहा! है? तब प्रभु प्रगट होता है। शक्ति में जो है, वह भेदज्ञान द्वारा पर्याय में प्रगट होता है। आहाहा! आहाहा! समझ में आया? यह श्लोक कहते हैं। **इस प्रकार कलश में...** इस प्रकार कलश में **महिमा प्रगट करके अधिकार पूर्ण करते हैं :—**

इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा
जीवाजीवौ स्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः।
विश्वं व्याप्य प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या
ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे।।४५।।

आहाहा! **इस प्रकार 'ज्ञान-क्रकच-कलना-पाटनं' ज्ञानरूपी करवत का जो बारम्बार अभ्यास है,...** आहाहा! ज्ञान की पर्याय को अन्दर में राग से भिन्न करने का अभ्यास, आहाहा! **इस प्रकार 'ज्ञान-क्रकच' ज्ञानरूपी करवत का 'कलना' 'कलना-पाटनं' 'कलना'** अर्थात् **बारम्बार अभ्यास है,... 'कलना'** अर्थात् अभ्यास। **'पाटनं'** अर्थात् बारम्बार। आहाहा! आहाहा! **ज्ञानरूपी करवत का...** ज्ञान है न, फिर **क्रकच** अर्थात् करवत। आहाहा! राग और ज्ञानस्वभाव के बीच भेद पाड़ने की करवत ज्ञान है। प्रज्ञाछैनी कहा था न? कहेंगे न आगे (समयसार गाथा २९४ में) आहाहा! जैसे करवत से लकड़ी के दो टुकड़े हो जाते हैं, वैसे राग से ज्ञानस्वभाव को भिन्न करने से, दोनों भिन्न पड़ जाते हैं। आहाहा! ऐसी बात! ज्ञानरूपी करवत का कलना अर्थात् अनुभव करने से-

अभ्यास करने से, अनुभव करने पर **पाटनं** अर्थात् बारम्बार, आहाहा! ज्ञान की पर्याय को अन्तर में राग से भिन्न करते-करते... आहाहा! **नचाकर**... अर्थात् परिणमाकर। आहाहा! भगवान आत्मा की राग से भिन्न दशा को परिणमाकर। आहाहा! **जहाँ जीव और अजीव दोनों...** आहाहा! जहाँ जीव और अजीव **दोनों प्रगटरूप से अलग नहीं हुए,...** आहाहा! अर्थात् पूर्ण नहीं हुए, ऐसे भिन्न प्रगट नहीं हुए, ऐसा है। प्रगटरूप से भिन्न अर्थात् केवल ज्ञानरूप से भिन्न नहीं हुए... यह कहेंगे अर्थ में। वहाँ तो '**ज्ञातृद्रव्यं प्रसभ-विकसत्-व्यक्त-चिन्मात्रशक्त्या**' दो अर्थ करेंगे। **अत्यन्त विकासरूप होती हुई अपनी प्रगट चिन्मात्रशक्ति से...** आहाहा! **विश्व को व्याप्त करके,...** अर्थात् ज्ञान की पर्याय लोकालोक को जानती पर्याय प्रगट होती है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन में भी जो ज्ञान हुआ, वह विश्व को प्रकाशित करता ज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! स्वयं का तो प्रकाशित किया परन्तु श्रुतज्ञान की पर्याय में भी वह विश्व-लोकालोक पूरा है, वह प्रकाश अर्थात् ज्ञात होता है। आहाहा! भले उपयोगरूप से इसे ख्याल में न आवे परन्तु इसके ज्ञान की पर्याय का विश्व को-समस्त को जानना, ऐसा प्रगट हो जाता है। आहाहा! **अत्यन्त विकासरूप होती हुई अपनी प्रगट चिन्मात्रशक्ति से विश्व को...** प्रगट होती चिन्मात्रशक्ति, हों! चिन्मात्रशक्ति तो त्रिकाल है परन्तु उसमें से प्रगट होती, आहाहा! अत्यन्त चिन्मात्रशक्ति से **विश्व को व्याप्त करके, अपने आप ही...** अर्थात् स्वयं ही यह '**अतिरसात्**' **अतिवेग से...** आहाहा! ज्ञानस्वभाव को राग से भिन्न करने पर, जो ज्ञानस्वभाव पर्याय में प्रगट हुआ, वह अतिवेग से विश्व को जाने, ऐसा उसका स्वभाव है, अर्थात् एक समय में जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! एक तो राग से भिन्न पड़कर ज्ञानस्वरूपी प्रकाशित हो उठा और दूसरा राग से भिन्न करके पूर्ण प्रकाशित हो गया। आहाहा! एक-एक गाथा, एक-एक कलश अलौकिक है! आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य ने अमृत... अमृत... बरसाया है। आहाहा!

इस कलश का आशय दो प्रकार का है, देखा? **उपरोक्त ज्ञान का अभ्यास करते-करते...** अर्थात्? राग जो पर्याय में है, उसका लक्ष्य छोड़कर, जो उस समय ज्ञान की पर्याय है, उसे ज्ञायक की ओर झुकाने पर-अभ्यास करने पर, आहाहा! इस प्रकार राग

से भिन्न पड़ा और पर्याय द्रव्य में ढलती है। आहाहा! **जहाँ जीव और अजीव दोनों स्पष्ट भिन्न समझ में आये कि तत्काल ही आत्मा निर्विकल्प अनुभव हुआ...** आहाहा! ऐसा कहते हैं पहले तो। राग से भेदज्ञान-स्वभाव को भिन्न करते-करते जहाँ आत्मा समझ में आया-आत्मा का भान हुआ कि तुरन्त ही निर्विकल्प अनुभव हुआ। उसी क्षण निर्विकल्प अनुभव होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : भिन्न करते-करते यह तो सविकल्प भेदज्ञान है और करते-करते...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, भेद करते-करते सविकल्प नहीं; राग से भिन्न करते। विकल्प नहीं, वह तो भेद का विकल्प भी यह करता हूँ वह विकल्प, ऐसा अभी यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो राग से ज्ञान की ओर का भेद करना, बस। इसमें भी यह भेदज्ञान विकल्प है-यह आता है, यह अपेक्षा दूसरी। ऐसे दो (भेद) करने पर राग और ऐसा भेद पड़े इतना, परन्तु यहाँ तो इस ओर ढलने पर... समझ में आया? ऐसा मार्ग! जिसका फल वर्तमान में शान्ति और आनन्द तथा जिसके पूर्ण फल में परम आनन्द और पूर्ण शान्ति (है) आहाहा! ऐसे भेदज्ञान की क्या बात करना! आहाहा! अरे! यह चीज़ नहीं मिलती और इसके बिना यह व्रत, तप और उपवास किये और हो गये पंचम गुणस्थान (वाले)। भाई! यह चीज़ जो है राग से भिन्न, आहाहा! है न? ऊपर कहा - ज्ञान का अभ्यास करने से... ज्ञान का अर्थात् राग से भिन्न पड़ने का अभ्यास करने पर। यहाँ तो भिन्न ऐसा भी नहीं कहा। ज्ञान का अभ्यास करने पर। **जहाँ जीव और अजीव दोनों स्पष्ट भिन्न समझ में आये कि तत्काल ही आत्मा निर्विकल्प अनुभव हुआ-सम्यग्दर्शन हुआ।** आहाहा!

राग, वह अजीव है; भगवान चैतन्यमूर्ति, वह जीव है। ऐसे अजीव से भिन्न ज्ञान का अभ्यास करते-करते जहाँ आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, ऐसा समझ में आया, उसी क्षण निर्विकल्प अनुभव होता है। ऐसा है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : समझ में आने का अर्थ स्पष्ट प्रतिभास में आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया और तुरन्त अनुभव हुआ, ऐसा। यह ज्ञायक-ऐसा जाना, उसी क्षण अनुभव हुआ। आहाहा! शब्द में ऐसा है अवश्य न? **प्रगटरूप से अलग नहीं हुए**—ऐसा कहा न? अर्थात्, ऐसे अत्यन्त पूर्ण अलग नहीं हुए परन्तु यहाँ राग से भिन्न पड़कर ज्ञानानन्द में अनुभव हुआ, अत्यन्त पूर्ण प्रगट भिन्न नहीं हुए - एक बात;

और अभी भी राग से भिन्न करके जहाँ ज्ञात हुआ, वहाँ अनुभव-सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन है, लो!

ज्ञान का अभ्यास करते... ऐसा कहा न? अर्थात् ज्ञान जो दशा है न? उसे अन्तर में झुकाते, ऐसा। आहाहा! विकल्प तो बाहर रह गया। ऐसा है, रसिकभाई! कलकत्ता-फलकत्ता में कहीं मिले ऐसा नहीं कहीं। कहो, अजीतभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प होने पर भी विकल्प से ही भिन्न करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो भिन्न ही पड़ा है। ज्ञान का अभ्यास। आहाहा! ज्ञान का अभ्यास करते (करते) - ऐसा कहा है न? **जहाँ जीव और अजीव दोनों स्पष्ट भिन्न समझ में आये...** आहाहा! **कि तत्काल ही आत्मा निर्विकल्प अनुभव हुआ...** आहाहा! **सम्यग्दर्शन हुआ।** आहाहा! अब सम्यग्दृष्टि आत्मा श्रुतज्ञान से विश्व को प्रकाशित करता है-ऐसा आया है न? **(विश्व के समस्त भावों को संक्षेप से अथवा विस्तार से जानता है,...)** उसे पूर्ण है, ऐसा भी जानता है और संक्षेप में भी जानता है। उसे उपयोग भले ऐसे काम न करे, परन्तु उपयोग का स्वरूप ऐसा है कि उसे पूरा विश्व ज्ञात हो जाता है। जहाँ स्व ज्ञात हुआ, इसलिए उसकी पर्याय में पर ज्ञात हो जाये, ऐसा उसका स्वरूप है-ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा की ज्ञान की पर्याय में पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... भगवान है, ऐसा जहाँ ज्ञात हुआ, आहाहा! तब उसी पर्याय में इस ओर पूर्ण है, वह भी ज्ञात हो जाता है। पूर्ण अर्थात् पूरा विश्व। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञान का अभ्यास करने से जहाँ जीव और अजीव दोनों भिन्न पड़ गये, अकेला जीव ज्ञायकभाव ख्याल में आया, उस क्षण में ही वह निर्विकल्प अनुभव होता है। आहाहा! और इससे ज्ञान की पर्याय में पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... परमात्मा पूर्ण स्वरूप भगवान, ऐसा ज्ञान हुआ; इसलिए उसकी पर्याय में इस ओर का पूरा विश्व है, उसका भी ज्ञान होता है, भले परोक्ष है। आहाहा! मूल कहने का आशय यह है कि जहाँ भगवान पूर्ण द्रव्यस्वभाव ज्ञान का अभ्यास करने से जहाँ ज्ञात हो गया, जानने में आया... आहाहा! उसी क्षण उसे अनुभव होता है और उसी क्षण वह ज्ञान की पर्याय है, वह यहाँ 'पूरे' को जाने, वहाँ ऐसे 'पूरे' को जानने की पर्याय वहाँ प्रगट की है। आहाहा!

मुमुक्षु : अलौकिक बातें हैं!

पूज्य गुरुदेवश्री : है ? ऐसी बातें हैं। आहाहा! यह मूल चीज़ यह है। अब इसे प्रगट हुए बिना, जाने बिना बाकी सब व्रत और तप करे और पंचम गुणस्थान हो जाये (ऐसा अज्ञानी मानता है) अरे भगवान! बापू! भाई! तुझे लाभ नहीं होगा। आहाहा! नुकसान के रास्ते जाने से लाभ होना मानता है प्रभु! आहाहा! ऐसा कि व्रत और तप लिया, इसलिए पंचम गुणस्थान हो गया। अभी सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, इसका तो पता नहीं होता। आहाहा!

देखो, यह अन्तिम गाथा है न! यह जीव-अजीव (अधिकार की अन्तिम गाथा है); इसलिए बहुत सरस बात संक्षिप्त में (गाथा के) कलश में सब भरा है, उसको स्पष्ट किया है। आहाहा! ऐसा कहा न, देखो न! **ज्ञानरूपी करवत का जो बारम्बार अभ्यास...** करने से, ऐसा कहा न, भाई! ज्ञान की जो परिणति... पहले आ गया है कि ज्ञान की परिणति है, वह प्रगट है। भले राग हो, उसका लक्ष्य छोड़ दे क्योंकि वह इसमें (स्वभाव में) नहीं है, इसका नहीं है; होता है तो भी दुःखरूप है, इसलिए वह जीव नहीं है। इस ज्ञान की परिणति को ऐसे अन्तर में झुकाने से... आहाहा! जाननेवाले की दशा को जाननहार की ओर झुकाने से, आहाहा! उसे ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा जानने में आ गया। आ गया अर्थात् तुरन्त ही, उसी क्षण निर्विकल्प अनुभव होता है। आहाहा! और उसी क्षण वह ज्ञान की पर्याय जहाँ स्व को-पूर्ण को जाने... यह आत्मा समझ में आया-ज्ञात हुआ, यह आत्मा समझ में आया-ज्ञात हुआ, उसी समय पर्याय में विश्व को जानने का भी स्वभाव पर्याय में प्रगट हुआ। आहाहा! आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभव के पहले ख्याल में आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी पर्याय में इतनी ताकत आयी, वह ज्ञात हुआ। भले उस पर तरफ इसका लक्ष्य न जाये, परन्तु इसकी पर्याय में पूरे विश्व को जानने की ताकत खिल निकली। आहाहा! ऐसी बात है। क्यों ? कि ज्ञान का अभ्यास करने से जहाँ ज्ञायक ज्ञात हुआ, तो ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है, इसलिए जब ज्ञाता ज्ञायक ज्ञात हुआ, वह स्वप्रकाशक हुआ, उसी समय परप्रकाशक विश्व का भी ज्ञान साथ आया। आहाहा! फिर भले विश्व के भावों को संक्षेप से या विस्तार से... **(निश्चय से विश्व को प्रत्यक्ष जानने का उसका स्वभाव है;...)** आहाहा! **(विश्व को प्रत्यक्ष जानने का उसका**

स्वभाव है;...) क्योंकि जहाँ स्वयं को प्रत्यक्ष जानता है, तब उस पर्याय का स्व-परप्रकाशक का प्रत्यक्ष जानने का स्वभाव है। **(इसलिए यह कहा कि वह विश्व को जानता है।) एक आशय तो इस प्रकार है।** दो आशय है न? आहाहा! यह धर्म कथा है। आहाहा!

दूसरा आशय (इस प्रकार से है)—जीव-अजीव का अनादिकालीन संयोग केवल अलग होने से पूर्व... आहाहा! वह केवल अलग अर्थात् मोक्ष, ऐसा। एक भाव यह लिया है। आहाहा! जीव और अजीव अर्थात् रागादि और भगवान आत्मा। अजीव शब्द से (आशय) राग। आहाहा! जीव और रागादि का **अनादिकालीन संयोग केवल अलग होने से पूर्व...** अलग तो है परन्तु पूर्ण पर्याय में अलग पड़े बिना पहले आहाहा! **जीव का मोक्ष होने से पूर्व,...** अर्थात् जीव का मोक्ष होने से पहले। वहाँ अन्दर आया था न? **प्रगटरूप से अलग नहीं हुए,...** ऐसा आया था न? अन्दर आया था। '**स्फुट-विघटनं न एव प्रयातः' प्रगटरूप से अलग नहीं हुए,...** अर्थात् केवलज्ञान नहीं हुआ - ऐसा कहते हैं। आहाहा! ...सन्तों की वाणी तो देखो! उनके एक-एक शब्द में-एक-एक पद में, ओहोहो! क्या गम्भीरता! क्या भरपूर भाव से भरपूर वाच्य और वाचक शब्द में... आहाहा! यह कहा था न? **प्रगटरूप से अलग नहीं हुए, वहाँ तो अत्यन्त विकासरूप होती हुई अपनी प्रगट चिन्मात्रशक्ति से विश्व को व्याप्त करके,...** प्रगट हुई है अर्थात् पूर्ण-केवलज्ञान प्रगट नहीं हुआ, उससे पहले सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट हो गया। आहाहा! भाई! यह कोई वार्ता नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रयोग करनेयोग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव का मोक्ष होने से पूर्व, भेदज्ञान के भाते-भाते... ज्ञान की परिणति को ज्ञायक की ओर झुकाने से। आहाहा! अमुक दशा होने से अर्थात् निर्विकल्प धारा जमी-अनुभव हुआ। **जिसमें केवल आत्मा का अनुभव रहा...** जिसमें केवल आत्मा का अनुभव रहा। **और वह श्रेणी..** आहाहा! **अत्यन्त वेग से आगे बढ़ते-बढ़ते..** आहाहा! **केवलज्ञान प्रगट हुआ...** आहाहा! बाद में भी कहा है न? कि ज्ञान का भान हुआ, भेद से, फिर भी भेद अभ्यास करते-करते चारित्र होता है-आता है न? आहाहा!

इस राग से भिन्न ज्ञायकस्वभाव का-चैतन्य का अनुभव हुआ। अब वहाँ तो दर्शन-ज्ञान और स्वरूपाचरण स्थिरता हुई। अब जब चारित्र प्रगट करना है तो इसे वर्तमान पर्याय से भी पूरी वस्तु भिन्न है, ऐसा अन्दर में अभ्यास करते-करते इसे चारित्र होता है और उग्र अभ्यास करते-करते केवलज्ञान हुआ। भेद अभ्यास-समयसार में चारित्र के लिये गाथा में आता है, आगे अधिकार है, आलोचना है न, तीन बोल, उसमें आता है। आहाहा! इतने से तो ज्ञान हुआ परन्तु अब अभी चारित्र प्रगट करना है तो उसे भी अन्दर में आश्रय ऐसे अन्दर भेद करते-करते द्रव्य का उग्र आश्रय लेते... आहाहा! अर्थात्? कि इतनी यह पर्याय खिली, उतना मैं नहीं। आहाहा! उसे पूर्ण ज्ञायक की ओर अभ्यास करने से चारित्र होता है और उसके अभ्यास में उग्रपना करते केवलज्ञान होता है। आहाहा! क्या शैली! चारों ओर से देखो तो अविरोध सिद्धान्त ही उत्पन्न होता है। आहाहा! इसका नाम सिद्धान्त होता है। आहाहा! जिसमें सिद्धपना प्राप्त हो, ऐसे सिद्धान्त को सिद्धान्त कहने में आता है। जिसका टोटल अन्त में सिद्ध (पना) हो। आहाहा! ऐसे शब्दों को सिद्धान्त कहा जाता है। आहाहा! वाणी द्वारा... वाच्य तो वह सिद्धान्त अन्दर है। आहाहा! राग से भिन्न पड़कर अनुभव हुआ परन्तु जहाँ तक पूर्ण भिन्न नहीं हुआ तो भी अनुभव तो हो गया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अर्थात्? भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप है, वह ज्ञानपरिणति द्वारा राग से भिन्न पड़कर इस ओर में अनुभव हुआ तो वह तो पूर्ण का अनुभव हुआ और इससे पर्याय में विश्व का प्रकाशकपना ऐसा ज्ञात हुआ, परन्तु अभी पूर्ण भेद प्रगट नहीं हुआ - भेद नहीं पड़ा। आहाहा!

यह तो परोक्षरूप से पर को और स्व को वेदन से और पर को जानने से इतना प्रगट हुआ परन्तु इसे पूर्ण केवलज्ञान जो है... आहाहा! उस ज्ञान का अन्दर में एकाग्र अभ्यास करते-करते केवलज्ञान होता है, उससे पहले अनुभव हो गया, ऐसा कहा है। अलग नहीं पड़ने से पहले अनुभव हुआ, यह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इसमें तो ऐसा है (कि) एक शब्द भी फेरफार हो तो सब (बदल जाये।) आहाहा! तीन लोक के नाथ की वाणी और संतों की वाणी! आहाहा! दूसरे साधारण मानस को तो अभिमान उतर जाये, ऐसा है। आहाहा!

भेदज्ञान के भाते-भाते... पहले ज्ञान का अभ्यास करते-करते, ऐसा शब्द था। समझ में आया? अब कहते हैं कि उस ज्ञान का भान हुआ, उसे भाते-भाते धारा जमी-

निर्विकल्प धारा जमी। आहाहा! अन्तर स्थिरता जमी, जिसमें केवल आत्मा का अनुभव रहा और वह **श्रेणी दशा अत्यन्त वेग से...** आहाहा! धारावाहिक श्रेणी अर्थात् धर्मधारा, वीतरागधारा। आहाहा! वीतरागस्वभाव के आश्रय से जो वीतरागधारा चली... वह **बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान प्रगट हुआ...** आहाहा! वापस ऐसा भी सिद्ध किया कि भेदज्ञान होते-होते उसका अभ्यास करते ही केवल(ज्ञान) हुआ; कोई राग की क्रिया थी और व्यवहार था; इसलिए केवलज्ञान हुआ (-ऐसा नहीं है)। आहाहा! उस समय भी जो राग था, उससे भिन्न पड़ा, परन्तु अभी राग रहा है। आहाहा! उससे भी भेद करते... करते... करते... अन्दर में दशा जमी, यह निर्विकल्पदशा जहाँ जमी.. आहाहा! आनन्द दशा (जहाँ जमी), वहाँ केवल आत्मा का अनुभव रहा। आहाहा! यह बात है।

मुमुक्षु : निर्विकल्प धारा जमी अर्थात् श्रेणी शुरु हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं? निर्विकल्प धारा हुई, उसका ही अर्थ वहाँ स्थिरता जमी। आहाहा! आनन्द के नाथ में पर्याय में स्थिरता जमी, यह वीतरागता.. वीतरागता.. वीतरागता.. जमी। आहाहा! वीतरागस्वभाव के उग्र आश्रय से वीतरागता जमी। आहाहा! वह वीतरागता जमने से केवलज्ञान हुआ। आहाहा! बारहवें (गुणस्थान में) वीतरागता होती है न? आहाहा! क्या मधुर शैली! क्या संक्षिप्त गागर में सागर भर दिया!! आहाहा! **फिर अघातियाकर्मों का नाश होने पर...** पहले ऐसा कहा था न - दोनों अत्यन्त भिन्न नहीं पड़े, इसलिए फिर यहाँ अलग पड़े हैं। वैसे पहले अत्यन्त भिन्न अनुभव से पड़ते हैं, वहाँ अभी सर्वथा पर से भिन्न पड़ा नहीं, इसलिए अनुभव हुआ - भिन्न पड़ा पहले, ऐसा कहा था न? वह पूर्ण अलग होने से पहले। आहाहा! **फिर अघातियाकर्मों का नाश होने पर जीवद्रव्य अजीव से केवल भिन्न हुआ।**

भगवान आत्मा, प्रतिजीवी गुण की भी जो विपरीतता थी, वह भी अजीव था, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? प्रतिजीवी गुण की जो विपरीतता थी, आहाहा! वह भी अजीव है। आहाहा! यहाँ जहाँ अन्दर में ऐसी स्थिरता जमी-निर्मल धारा (जमी), वहाँ उसकी पूर्णता हो गयी। फिर अघाति का नाश होकर केवल भिन्न हुआ। जीवद्रव्य, अजीव से अत्यन्त अलग हुआ। **जीव-अजीव के भिन्न होने की यह रीति है।** आहाहा! कैसी शैली! पहले से ठेठ तक की भी धारा एकधारी है।

मुमुक्षु : पहली भाव भिन्नता हुई, फिर क्षेत्र भिन्नता हुई...

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे रे ! ऐसी बातें भी सुनने को नहीं मिले, इसे बेचारे को जाना कहाँ ? मान बैठता है कि हम धर्म करते हैं। आहाहा !

टीका - इस प्रकार जीव और अजीव अलग-अलग होकर (रंगभूमि में से) बाहर निकल गये। अजीव अलग पड़ गया और जीव अकेला पूर्ण हो गया। आहाहा ! देखा ? वह विपरीत पर्याय है, वह सब अजीव है। आहाहा ! अकेला जहाँ पूर्णस्वरूप प्रगट हुआ, वहाँ अजीव अलग पड़ गया। आहाहा !

भावार्थ - (समयसार की इस 'आत्मख्याति' नामक टीका के) प्रारम्भ में पहले रंगभूमिस्थल कहकर उसके बाद टीकाकार आचार्य ने ऐसा कहा था... वह जीव डाला था न पहला, जीव अधिकार, ३८ (गाथा तक), वह रंगभूमि इस **नृत्य के अखाड़े में जीव-अजीव दोनों एक होकर प्रवेश करते हैं और दोनों ने एकत्व का स्वाँग रचा है। वहाँ भेदज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष ने सम्यग्ज्ञान से...** सम्यग्ज्ञान से **उन जीव-अजीव दोनों की उनके लक्षणभेद से परीक्षा करके...** आहाहा ! राग का लक्षण आकुलता है; भगवान का लक्षण अनाकुलता। आहाहा ! आहाहा ! **परीक्षा करके दोनों को पृथक् जाना, इसलिए स्वाँग पूरा हुआ...** हो गया। आहाहा ! **और दोनों अलग-अलग होकर अखाड़े से बाहर निकल गये। इस प्रकार अलंकारपूर्वक वर्णन किया है।**

विशेष आयेगा ! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)